जनसत्ता

15 फरवरी, 2019

दहशतगर्दी का दायरा

जब घाटी में बर्फबारी तेज होती है, आतंकी संगठन सक्रिय हो उठते हैं। इस दौरान अक्सर घुसपैठ बढ़ जाती है। इस बार भी उन्होंने हमले तेज कर दिए हैं। मगर इस बार उनकी हताशा साफ नजर आ रही है। गुरुवार को केंद्रीय सुरक्षा बल के काफिले पर हमला कर दिया, जिसमें करीब चालीस सुरक्षाकर्मी मारे गए। बड़ी संख्या में जवान घायल भी हुए हैं। काफिले में करीब ढाई हजार सुरक्षाकर्मी जा रहे थे। हमला एक वाहन में विस्फोटक रख कर किया गया, जिसे सड़क के किनारे खड़ा कर दिया गया था। इस घटना की जिम्मेदारी आतंकी संगठन जैश-ए-मोहम्मद ने ली है। पिछले कुछ समय से जिस तरह सुरक्षाबलों ने आतंकी संगठनों पर नकेल कसनी शुरू की है, उससे उनका दायरा सिकुड़ना शुरू हो गया है। पिछले महीने बारामूला को आतंकवाद मुक्त जिला घोषित किया जा चुका है। सघन तलाशी अभियान और सीमा पार से मिलने वाले साजो-सामान और वित्तीय मदद पर कड़ी नजर रखी जाने की वजह से उनकी ताकत काफी कम हो गई है। इसी तरह स्थानीय लोगों से उन्हें सहयोग नहीं मिल पा रहा, जिसकी खीझ उनमें साफ दिखने लगी है।

इससे पहले बुधवार को पुलवामा के एक निजी स्कूल में विस्फोट कर उन्होंने स्थानीय लोगों में दहशत पैदा करने का प्रयास किया। हालांकि किसी स्कूल पर आतंकी हमले की यह पहली घटना नहीं है। पहले भी दहशतगर्दों ने कई स्कूलों में आग लगा दी थी। दरअसल, वे नहीं चाहते कि युवा पढ़-लिख कर समाज की मुख्यधारा में शामिल हों। वे उन्हें गुमराह कर आतंक के रास्ते पर ढकेलना चाहते हैं। पिछले साल भी इसी तरह उन्होंने स्कूलों पर हमले किए थे और बोर्ड परीक्षाएं प्रभावित हुई थीं। तब कश्मीरी बच्चों को दिल्ली लाकर उन्हें परीक्षा दिलानी पड़ी थी। इस बार भी बोर्ड परीक्षा के पहले उन्होंने विस्फोट कर उस स्कूल के दसवीं कक्षा के करीब पच्चीस बच्चों को घायल कर दिया। कुछ समय पहले तक वे सुरक्षाबलों पर पत्थर फेंकने के लिए बच्चों को उकसाने में कामयाब हो जा रहे थे, पर अब नहीं हो पा रहे। इसलिए कि स्थानीय लोग समझ चुके हैं कि दहशतगर्द उन्हें मोहरा बना कर अपनी साजिशों को अंजाम देते हैं, जिसका असर उनकी रोजी-रोजगार पर पड़ता है। फिर आखिरकार उन्हीं के बच्चे मारे जाते हैं। इस तरह पुलवामा के स्कूल पर हमले से स्थानीय लोगों में आतंकी संगठनों के प्रति नकारात्मक संदेश ही गया है।

आतंकवादियों को सबसे अधिक परेशानी सुरक्षाबलों से है। सीधे मुठभेड़ में सुरक्षाकर्मियों को टक्कर देने की ताकत अब उनमें नहीं बची है। आतंकी संगठनों के बड़े नेता प्रायः मारे जा चुके हैं। उनके ठिकानों की पहचान हो चुकी है और सब जगह सुरक्षा के कड़े इंतजाम हैं। नागरिक ठिकानों में उन्हें पनाह पाने की जगहें कम रह गई हैं। सुरक्षाबलों के तलाशी अभियान के दौरान अब स्थानीय लोग पहले की तरह उनकी ढाल बन कर नहीं खड़े होते। इसलिए कुछ महीने पहले आतंकियों को पर्चे चिपका कर अपील करनी पड़ी थी कि लोग अपने बच्चों को पुलिस में भर्ती होने से रोकें। जब लोगों ने उनकी बात नहीं मानी, तो सुरक्षाबलों में भर्ती कश्मीरी युवाओं को अगवा करने और उन्हें जान से मारने तक के कदम उठाए गए। पर उससे भी वहां के लोगों में कोई भय नहीं बन पाया है। ऐसे में वे स्थानीय ठिकानों के साथ-साथ सुरक्षाबलों पर हमले की रणनीति बना रहे हैं। उन्हें नाकाम करने के लिए खुफिया एजेंसियों और सुरक्षाबलों को अपनी रणनीति और पुख्ता करनी होगी।

पुलवामा में सीआरपीएफ के काफिले पर हमला यह जाहिर करता है कि आतंकवादियों ने काफी सोच-समझ कर और लंबी तैयारी के साथ अपनी साजिश को अंजाम दिया। यों सेना का काफिला रोज निकलता है, पर इस तरह हमला करने में वे पहली बार सफल हुए हैं। इस बारे में न तो खुफिया एजेंसियों को कोई भनक थी और न काफिला निकलने से पहले रास्ते पर जैसे सुरक्षा इंतजाम होने चाहिए थे, वे हुए। आतंकवादियों को समय और काफिले की प्रकृति वगैरह के बारे में पहले से जानकारी थी, इसलिए उन्होंने वाहन में विस्फोटक रख कर सड़क के किनारे खड़ा कर दिया। लिहाजा इस मामले में अधिक सावधानी बरतनी होगी। आमतौर पर जब सेना का काफिला गुजरता है, तो सामान्य गाड़ियों को किनारे रोक दिया जाता है, उन पर नजर रखने के लिए सुरक्षाकर्मी होते हैं, पर पुलवामा में उनसे चूक हुई, जिससे आतंकी गोलीबारी करने की हिम्मत भी जुटा पाए। इससे आतंकवादियों का मनोबल बढ़ सकता है, इसलिए सुरक्षाबलों को उन पर नकेल कसने के लिए अपनी तैयारी में रह गई कमियों को दूर करने का प्रयास करना होगा।

विवाद और समाधान

उपराज्यपाल और दिल्ली सरकार के बीच अधिकारों के बंटवारे को लेकर लंबे समय से चला आ रहा गतिरोध लगता है अभी पूरी तरह से खत्म नहीं होने वाला। नौकरशाही पर नियंत्रण सहित दूसरे महत्त्वपूर्ण विषय किसके अधिकार क्षेत्र में रहें, इसे लेकर सुप्रीम कोर्ट के दो सदस्यीय खंडपीठ ने गुरुवार को जो फैसला दिया, उससे समस्या का संपूर्ण रूप से समाधान होता नहीं है। सेवाओं को लेकर पीठ में मतैक्य नहीं होने की वजह से खंडित फैसला आया, इसीलिए अब यह मामला वृहद पीठ देखेगी। ऐसे में स्थिति टकराव वाली ही बनी रहेगी। हालांकि पीठ ने कुछ मामलों में स्थिति स्पष्ट करते हुए बता दिया है कि दिल्ली सरकार के दायरे और अधिकार क्षेत्र क्या हैं। खंडपीठ के दोनों सदस्यों ने भ्रष्टाचार निरोधक शाखा (एसीबी), जांच आयोग बनाने, बिजली बोर्डों पर नियंत्रण, भूमि राजस्व मामलों और लोक अभियोजकों की नियुक्ति संबंधी मामलों पर एकमत होकर व्यवस्था दी। सर्वोच्च अदालत की ओर से कुछ विषयों पर आई इस व्यवस्था के बाद विवाद की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती।

दिल्ली सरकार शुरू से ही यह दलील देती रही है कि एसीबी उसके अधिकार क्षेत्र में होना चाहिए, ताकि वह भ्रष्ट अधिकारियों के खिलाफ कार्रवाई कर सके। लेकिन अदालत ने साफ कर दिया है कि एसीबी दिल्ली सरकार का हिस्सा तो है लेकिन उस पर नियंत्रण उपराज्यपाल का ही होगा। स्पष्ट है कि एसीबी भ्रष्टाचार के मामलों में केंद्र सरकार के अधिकारियों पर कोई कार्रवाई नहीं कर सकेगा। यह दिल्ली सरकार के लिए झटका है। नौकरशाही पर नियंत्रण को लेकर आए खंडित फैसले से समस्या वहीं की वहीं बनी रह गई है। पीठ के एक सदस्य ने फैसले में साफ किया कि दिल्ली में सुचारु शासन के लिए सचिवों और विभागों के प्रमुखों के तबादले और तैनाती उपराज्यपाल कर सकते हैं, जबकि दिल्ली, अंडमान और निकोबार द्वीप सिविल सेवा (दानिक्स) और दिल्ली, अंडमान और निकोबार द्वीप पुलिस सेवा (दानिप्स) के अधिकारियों के मामले में फाइलें मंत्रियों की परिषद से उपराज्यपाल के पास भेजनी होंगी। अगर किसी तबादले को लेकर सरकार और उपराज्यपाल के बीच एक राय नहीं बनती है तो ऐसे में उपराज्यपाल का फैसला ही मान्य होगा। जबकि पीठ के दूसरे सदस्य ने साफ कहा कि कानून के मुताबिक दिल्ली सरकार के पास सेवाओं पर नियंत्रण की कोई शक्ति नहीं है। जाहिर है, अफसरों के तबादले में अंतिम रूप से फैसला तो उपराज्यपाल का ही होगा। लेकिन सवाल यह है कि अगर गतिरोध जारी रहा तो सरकार काम करेगी कैसे? बेहतर हो कि सरकार और उपराज्यपाल टकराव छोड़ सर्वोच्च अदालत के फैसले की भावना के अनुरूप काम करें, ताकि जनहित के कार्य प्रभावित न हों।

कल्पमेधा

जिस व्यक्ति पर धन का लालच छा गया, उसने अपनी जिंदगी के खलिहान को हवा में उड़ा दिया।

-शेख सादी

खाली हाथ किसान

संजीव पांडेय

केंद्र सरकार से उम्मीद थी कि राज्यों के मुकाबले बेहतर आर्थिक स्थिति के कारण किसानों के लिए ठोस सहायता राशि का इंतजाम करेगी। जितनी जमीन पर केंद्र सरकार ने छह हजार रुपए की सालाना सहायता राशि देने की घोषणा की है, उतनी ही जमीन पर तेलंगाना सरकार चालीस हजार रुपए दे रही है। तेलंगाना सरकार रयथू बंधु योजना के तहत राज्य के किसानों को प्रति एकड़ आठ हजार रुपए सलाना दे रही है और इससे तेलंगाना के अट्ठावन लाख किसानों को लाभ मिल रहा है।

केंद्र सरकार के अंतरिम बजट में किसानों को इस बार कुछ तो मिला। अंतरिम बजट में घोषित प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि योजना से किसानों को बहुत राहत तो नहीं मिलेगी, लेकिन इस योजना में मिलने वाली राशि से खाद, कीटनाशक और बीज खरीद में किसानों को आंशिक राहत मिल सकती है। बशर्ते खाद और कीटनाशक की कंपनियां किसानों का खयाल रखें और बाजार में अपने उत्पादों के मूल्यों में बढ़ोतरी न करें। अभी तक यह देखा गया है कि जैसे ही किसानों के उत्पादों के न्यूनतम समर्थन मूल्य में बढ़ोतरी की घोषणा सरकार करती है, दूसरी तरफ खाद और कीटनाशकों की कीमतों में बढ़ोतरी हो जाती है। किसान को न्यूनतम समर्थन मूल्य का लाभ मिले या न मिले, उसे बढ़ी कीमतों पर खाद और कीटनाशक खरीदने पड़ते हैं। बीते साल किसानों को यही परेशानी झेलनी पड़ी थी। अब सरकार द्वारा किसानों को आर्थिक सहायता देने की घोषणा के बाद खाद, बीज और कीटनाशक बनाने वाली कंपनियों का रुख देखने वाला होगा।

वैसे तो किसानों को बजट से खासी उम्मीद थी। लेकिन उन्हें बजट में ऐसा कुछ कुछ नहीं मिला जिसकी वे उम्मीद कर रहे थे। किसानों को उम्मीद थी कि केंद्र सरकार कर्ज माफी की घोषणा कर अंतरिम बजट में बड़ी सौगात देगी। लेकिन कर्ज माफी को लेकर सरकार ने चुप्पी साध ली। एक बारगी मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ और राजस्थान सरकार द्वारा कर्ज माफी की घोषणा के बाद केंद्र सरकार से भी किसान कर्ज माफी की उम्मीद कर रहे थे। लेकिन केंद्र सरकार के कर्ज माफी को लेकर कोई कदम नहीं उठाए जाने से देश के उन अर्थशास्त्रियों में खासी खुशी है जो कर्ज माफी की संस्कृति का विरोध कर रहे हैं। केंद्र सरकार ने कर्ज माफी की बजाय किसानों को राहत देने का दूसरा रास्ता चुना। केंद्र प्रति वर्ष किसानों को कुछ अनुदान राशि देने को तैयार हो गया। इसी की घोषणा अंतरिम बजट में की गई। प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि योजना के तहत दो हेक्टेयर तक जोत वाले किसानों को छह हजार रुपए प्रति वर्ष देने की घोषणा सरकार ने की। हालांकि योजना जब जमीन पर लागू होगी तब इसकी सफलता का अंदाज लगेगा। योजना की घोषणा से पहले जमीनी स्तर पर तैयारी नहीं की गई। फिर यह भी आशंका व्यक्त की जा रही है कि इस योजना के तहत सिर्फ जमीन के मालिकों को लाभ मिलेगा। बटाईदारों को इस योजना का लाभ नहीं मिलेगा, क्योंकि बटाईदारों का रेकार्ड ही कई राज्यों में सरकारों के पास नहीं है। जबकि देश के कई राज्यों में बड़े पैमाने पर जमीन बटाईदार ही जोत रहे हैं। इसलिए बटाईदारों को लेकर सरकारी सर्वेक्षण जरूरी है। अगर सर्वेक्षण नहीं होगा तो पैसा सीधे जमीन के मालिकों के हिस्से में चला जाएगा।

हालांकि प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि में तय की गई राशि ऊंट के मुंह में जीरे के बराबर है। सरकार का दावा है कि इस पर बहत्तर हजार करोड़ रुपए खर्च होंगे। लेकिन किसानों के आर्थिक नुकसान के मुकाबले यह राशि कुछ नहीं है। किसानों के सालाना घाटे का आकलन करें तो पता चलता है कि किसान कितनी दयनीय हालात में हैं। देश में किसानों को सालाना दो लाख पचास हजार करोड़ रुपए का नुकसान हो रहा है। सन 2000 से लेकर अब तक देश के किसानों को होने वाले आर्थिक घाटा पैंतालीस लाख करोड़ रुपए के आसपास बैठता है। केंद्र सरकार से उम्मीद थी कि राज्यों के मुकाबले बेहतर आर्थिक स्थिति के कारण किसानों के लिए ठोस सहायता राशि का इंतजाम करेगी। जितनी जमीन पर केंद्र सरकार ने छह हजार रुपए की सालाना सहायता राशि देने की घोषणा की है, उतनी ही जमीन पर तेलंगाना सरकार चालीस हजार रुपए दे रही है। तेलंगाना सरकार रयथू बंधु योजना के तहत राज्य के किसानों को प्रति एकड़ आठ हजार रुपया सलाना दे रही है और इससे तेलंगाना के अट्ठावन लाख किसानों को लाभ मिल रहा है। तेलंगाना जैसे छोटे राज्य में राज्य सरकार ने अपने वार्षिक बजट में इस योजना के लिए बारह हजार करोड़ रुपए का इंतजाम किया है। जबकि केंद्र सरकार ने पूरे भारत के लिए बहतर हजार करोड़ रुपए रखा है। यही नहीं, ओड़िशा सरकार ने राज्य के लगभग तीस लाख किसानों को पांच फसली सीजन के लिए

पच्चीस हजार रुपए देने की घोषणा की है। इस योजना की खासियत यह है कि इसमें बटाईदारों को भी एकमुश्त बारह हजार पांच सौ रुपए दिए जाएंगे। उड़ीसा सरकार ने भी इसके लिए बजट में दस हजार करोड़ रुपए का प्रावधान रखा है।

हालांकि कर्ज माफी को लेकर अर्थशास्त्रियों की चिंता यह है कि देश को दुबारा कल्याणकारी राज्य की तरफ मोड़ने की कोशिश की जा रही है जबकि खजाने की हालत ठीक नहीं है। हालांकि इसमें ज्यादातर अर्थशास्त्री वे हैं जो कारपोरेट घरानों के लाभ की वकालत करते रहे हैं। जब कारपोरेट घरानों का कर्ज एनपीए में शामिल हो जाता है, तो ये अर्थशास्त्री चुप रहते हैं। इन अर्थशास्त्रियों के जीडीपी विकास दर की परिभाषा में कारपोरेट क्षेत्र का विकास ही शामिल होता है। देश के किसान, गरीब, मजदूर से इनका कोई सरोकार नहीं होता। हालांकि उनके कुछ तर्कों को सही माना जा सकता है। एक तर्क तो यह कि कर्ज माफी किसानों के संकट का कोई हल नहीं है। अगर कर्ज माफी की घोषणा सरकार करती भी है, तो इससे किसानों का संकट दूर नहीं होगा, क्योंकि इससे तीस फीसद किसानों को ही लाभ मिलेगा। खासकर उन किसानों को कर्ज माफी का लाभ मिलेगा जिनकी पहुंच कर्ज के संस्थागत स्रोतों तक है। यह भी सच्चाई है कि जिन राज्यों में कर्ज माफी की घोषणा की गई है, वहां की माली हालत कुछ ठीक नहीं है। पंजाब, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, कर्नाटक जैसे राज्यों में कर्ज माफी की रकम दो लाख करोड़ तक पहुंच सकती है। वैसे में किसानों के हितों के लिए बाजार में सुधारात्मक कदम उठाना होगा।

सच्चाई तो यह है कि किसान न तो राज्य सरकारों के एजेंडे में है, न ही केंद्र के एजेंडे में। अगर किसान सरकारों की प्राथमिकता होता तो शायद आत्महत्या की नौबत नहीं आती, गन्ना किसानों की बकाया राशि का भुगतान अब तक हो चुका होता। उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र के गन्ना किसानों का बुरा हाल है। इन राज्यों में गन्ना किसानों की बकाया राशि सात हजार करोड़ रुपए से ज्यादा है, जिसके भुगतान में आनाकानी हो रही है। मिल मालिकों ने किसानों से गन्ना तो खरीद लिया, लेकिन पैसे देने के मामले में हाथ खड़े कर रखे हैं। राज्य सरकारें इसमें हस्तक्षेप नहीं कर रही हैं। दूसरी तरफ न्यूनतम समर्थन मूल्यों की घोषणा कागजों में हो रही है। इसका लाभ देश भर में मात्र बीस फीसद किसान को मिल रहा है। न्यूनतम समर्थन मूल्य तय होने के बाद भी किसानों के उत्पादों को बाजार में न्यूनतम समर्थन मूल्य से बीस से तीस फीसद कम कीमत पर खरीदा जा रहा है। सरकार का बाजार पर नियंत्रण नहीं है, मुनाफाखोरों पर नियंत्रण नहीं है। सरकारी एजेंसियों ने धीरे-धीरे न्यूनतम समर्थन मूल्य पर खरीद से हाथ खींचने शुरू कर दिए हैं। हरियाणा और मध्यप्रदेश की सरकारों ने किसानों के उत्पादों को बेहतर कीमत देने के लिए भावांतर भुगतान योजना की शुरुआत की थी, जो बुरी तरह से नाकाम साबित हुई। इस योजना का पूरा लाभ मुनाफाखोरों ने उठाया, जबकि किसानों को उनके कृषि उत्पादों की कम कीमत बाजार में मिली। ऐसे में सरकारें किसानों का उद्धार कैसे कर पाएंगी?

घर की तलाश

संजीव राय

दुनिया मेरे आगे

बीस-बाईस साल से किराये के मकान में रहते हुए दिल्ली के एक इलाके से दूसरे इलाके में घूमते-घूमते परेशान हो गए। किराये के मकान में एक कील भी ठोकनी हो तो सोचना पड़ता है। लोगों ने पहले भी समझाया कि आप एक मकान खरीद क्यों नहीं ले लेते! तो पहले हमने अनसुना कर दिया था, लेकिन अब हम इस अभियान पर जुट गए हैं।

शुरुआत में जिन इलाकों में हमने घर की तलाश शुरू की, वहां मकानों की कीमत अपने बजट से बाहर निकली। छतरपुर, महमदपुर, अर्जुन नगर में सस्ता मकान मिलने की खबर लगी। उम्मीद बंधी कि चल के देखा जाए। फिर पता चला जो सस्ते मकान मिलेंगे, उन पर लोन नहीं होगा। कुछ मकान फ्रीहोल्ड नहीं थे, तो कुछ की रजिस्ट्री नहीं होती। कुछ मामलों में नकद रुपयों की जरूरत थी तो अपनी जमापूंजी का मेल नहीं बैठा और फिर मकान खरीदने का मामला कुछ साल सुस्त पड़ गया।

पति-पत्नी दार्शनिक भाव से सोचने लगे कि बस बच्चे पढ़-लिख लें तो बुढ़ापे में हम गांव चले जाएंगे। कौन दिल्ली की झंझट में रहेगा, यहां प्रदूषण भी बढ़ता जा रहा है और भीड़ भी!

हम कुछ साल अपने नौकरी-बच्चों में व्यस्त हो गए। इस बीच कई दोस्तों ने गाजियाबाद के वैशाली-वसुंधरा, नोएडा-ग्रेटर नोएडा में अपना आशियाना बना लिया। एक बार फिर हमने मकान की तलाश शुरू की। बच्चों का स्कूल, पत्नी का कार्यस्थल, नोएडा-गाजियाबाद से दूर था, तो एनसीआर में कहीं दूर मकान खरीदने और किराये के साथ बैंक का लोन देने का विकल्प उपयुक्त नहीं लगा। एक प्रॉपर्टी डीलर जो पहले चार्टर्ड आकउंटेंट थे, उनकी कही बात याद आई- 'मास्टर लोग पैसा कम और विकल्प ज्यादा लेकर मकान ढूंढ़ते हैं'! लेकिन हमने हार नहीं मानी।

नोटबंदी के बाद मकानों के दाम नीचे आने की खबर से अपने हौसले बुलंद हुए। कुछ प्रॉपर्टी एजेंट हमारा बजट सुनते ही कहते, इस बजट में इस इलाके में नहीं मिलेगा! एक प्रॉपर्टी एजेंट से फोन पर बात हुई। हम पति-पत्नी उसके 'दफ्तर' पहुंचे। छोटी-सी जगह में छह लोग बैठे थे। हमारा छोटा-सा इंटरव्यू लिया उन्होंने। पूछा- क्या करते हैं? कहां रहते हैं अभी? कितना बजट है? कितना कैश देंगे? लोन भी लेंगे?

इंटरव्यू के बाद दो बॉडी बिल्डर एक बुलेट पर सवार हुए। हमको भी एक बाइक दे दी और मकान दिखाने चल पड़े। कई सालों के बाद मैंने डरते-डरते बाइक स्टॉर्ट की थी। हम थोड़ा सशंकित भी थे। गली-गली घूम कर हमने कुछ मकान देखे। दो सौ गज के प्लाट पर, पुराने मकान गिरा कर तीन-चार मंजिल के मकान बने थे। उन मकानों में पतली सीढ़ी-एक छोटी लिफ्ट का भी प्रावधान था, लेकिन कीमतें हमारे बजट से अधिक थीं। चलने से पहले फिर हमारी तरफ सवाल आया, 'कौन सा पसंद आया'? हम गोल-मोल जवाब देकर वहां से निकल आए।

फिर पूर्वी दिल्ली में शुरू हुई तलाश। बजट थोड़ा बढ़ाया। कुछ इलाकों में बिना लिफ्ट के टॉप फ्लोर के विकल्प मिले। सोचा, चलो एक फाइनल कर लेते हैं। तब तक किसी ने अपना अनुभव बताया-'बिना लिफ्ट के टॉप फ्लोर मत लेना, बहुत दिक्कत होती है, गर्मी लगती है और बाद में जल्दी बिकता नहीं है।' हम डर गए। फिर डीडीए वाले मकान देखे। किसी ने कहा- 'डीडीए वाले मकान बहुत पुराने हो चुके हैं, पानी की दिक्कत होती है, आप रोज प्लंबर-इलेक्ट्रीशियन बुलाते रहेंगे।' फिर सलाह आई, 'ढंग के अपार्टमेंट में घर लेना, बच्चों के लिए ठीक होता है, पढ़े-लिखे लोग रहते हैं, सिक्योरिटी रहती है।' लंदन में रहे एक दोस्त से बात की तो उनका कहना था कि घर की लोकेशन अच्छी होनी चाहिए बस यह ध्यान रखिएगा!

अभी तक हम दो बैडरूम के फ्लैट देख रहे थे। इसी बीच, मेरे एक दोस्त मिलने आए तो उन्होंने कहा- तीन बैडरूम का लेना चाहिए। आप लोग सामाजिक व्यक्ति हैं, कोई न कोई मेहमान तो आता-जाता रहेगा और फिर एक कमरा, अपने पढ़ने-लिखने का भी होना चाहिए! फिर क्या था, हमने कुछ थ्री बैडरूम फ्लैट भी देख डाले।

पिछले छह-सात महीनों में हमने इस विषय पर काफी शोध किया। सोसाइटी के गार्ड-केयरटेकर से लेकर चलते-फिरते प्रॉपर्टी डीलरों के नेटवर्क का अंदाजा हुआ। रियल बजट और 'मांगने वाले बजट' का भी कुछ मर्म समझ में आया। दो-तीन बार मकान के मालिकों से मीटिंगें हुईं, लेकिन बात अभी बनी नहीं है! मुझे अब किराये के मकान का विकल्प भी ठीक ही लग रहा है। इसमें लोन का दबाव भी नहीं रहेगा और शहर में मकान नहीं होगा तो होली-दिवाली में बच्चों का गांव आना-जाना लगा रहेगा। दिल्ली से जब निकलना हो तो आसानी से निकल भी सकते हैं। सबसे बड़ी बात यह भी है कि हमारा गांव, कागज में ही सही, एक और पीढ़ी तक स्थायी पते में दर्ज होता रहेगा।

कैसा भय

देश की आम जनता को समुचित सुरक्षा मिले या न मिले, पर्याप्त सुरक्षाकर्मियों के अभाव में जघन्य अपराध बढ़ने के बावजूद पंचायत के मुखिया और छुटभैये नेताओं से लेकर बड़े-बड़े राजनेता सरकारी खर्च पर सुरक्षा प्राप्त करना अपनी शान समझते हैं। इसकी वजह स्वयं को जनता के बीच विशिष्ट और अतिविशिष्ट होने का अहसास कराना भी है। लेकिन हास्यप्रद स्थिति उस समय हो जाती है जब अपराधिक पृष्ठभूमि वाले व्यक्ति राजनीति में पैठ बनाने के बाद विरोधियों से अपनी जान बचाने के लिए सरकारी खर्च पर सुरक्षा हासिल कर लेते हैं। कई बार अदालतों के सख्त रुख के बाद इनसे सुरक्षा वापस तक लेनी पड़ी है।

इस समय केंद्र सरकार 299 व्यक्तियों को सुरक्षा प्रदान कर रही है। इसके अलावा राज्य सरकारों ने अपने तमाम नेताओं को अलग से सुरक्षा दे रखी है। इन 299 व्यक्तियों में से 26 को जेड प्लस सुरक्षा, 59 को जेड श्रेणी, 145 को वाई प्लस, जबकि एक व्यक्ति को वाई श्रेणी और 68 को एक्स श्रेणी की सुरक्षा मिली हुई है। इसके अलावा सुरक्षा के लिहाज से बुलेट प्रूफ गाड़ियों, दूसरे वाहनों, सुरक्षा उपकरणों की खरीद और उनके रखरखाव का खर्च सरकार अलग से वहन करती है। ब्रिटेन में 84 वीआइपी हैं, फ्रांस में 109, जापान में 125, चीन में 435, जबकि हमारे देश में वीआइपियों की संख्या 5,79,092 है। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि पंचायत के सरपंच और मुखिया से लेकर रसूख वाले नेताओं को मिली इस सुरक्षा का खर्च उन्हीं से वसूला जाए? क्योंकि आम नागरिकों को सुरक्षा प्रदान करने की बजाय इन कुछ सौ व्यक्तियों की सुरक्षा में बड़ी संख्या में प्रशिक्षित सुरक्षाकर्मी तैनात करना सरासर देश के संसाधनों के साथ ही जनता के धन का दुरुपयोग भी है। हमारे यहां जेड प्लस, जेड, वाई प्लस और वाई श्रेणी की सुरक्षा प्राप्त नेता जब किसी समारोह या जनसभा में अपनी गाड़ियों के काफिले और सुरक्षा तामझाम के साथ पहुंचते हैं, तो लगता है मानो ब्रिटिश राज का कोई लाट साहब पहुंच रहा हो! नेताओं को मिली इस सुरक्षा से आम जनता के मन में भय पैदा होता है। जिस जनता ने उन्हें अपना नेता चुना है, उसके बीच जाने में उन्हें भय कैसा? वैसे भी लोकतंत्र में जनता और राजनेता के बीच दूरी ठीक नहीं मानी जाती। पड़ोसी पाकिस्तान में तो उच्चतम न्यायालय ने दो टूक शब्दों में राजनेताओं को अपनी सुरक्षा का बंदोबस्त खुद के पैसे पर करने का आदेश दे दिया है।

प्रधानमंत्री हमेशा वीआइपी संस्कृति खत्म करने की पैरवी करते दिखाई पड़ते हैं। इसलिए वे मैट्रो तक में बैठकर सफर करने से गुरेज नहीं करते। जब उन्होंने गाड़ियों से लाल बत्ती हटाने का आदेश दिया था, तो सभी ने इस फैसले की सराहना की थी। लगा था कि अब जनता और राजनेता के बीच कोई फर्क नहीं रहेगा। इसी तरह यदि प्रधानमंत्री बिना जरूरत के सुरक्षा का तामझाम लेकर घूम रहे नेताओं को अपनी सुरक्षा का खर्च खुद वहन करने को कहेंगे, तो ज्यादातर नेता अपनी सुरक्षा वापस कर देंगे और यदि कोई सुरक्षा चाहेगा भी तो उससे सरकार को राजस्व प्राप्त होगा। वैसे भी राजनेता अपनी सुरक्षा का खर्च खुद वहन कर सकते हैं। इससे प्राप्त राजस्व से देश के विकास को नई रफ्तार मिल सकेगी।

● *रोहित यादव, महर्षि दयानंद विवि, रोहतक*

चौपाल

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

समय की मांग

अपने और अपनी पार्टी के राजनीतिक फायदे के लिए करदाता की खून-पसीने की कमाई को धरने में फूंक देना जनता पर अत्याचार से कतई कम नहीं है। आंध्रप्रदेश के मुख्यमंत्री ने दिल्ली में धरना देने के लिए दो रेलगाड़ियां बुक करा कर और अपने प्रदेश के लोगों से धरना दिलवा का महज बारह घंटे में 11 करोड़ रुपए स्वाहा कर दिए। इसी तरह पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री भी धरने पर बैठ कर प्रदेश की मशीनरी और धन का दुरुपयोग कर चुकी हैं। दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल का अनशन-धरनों का पुराना नाता रहा है, लेकिन राजनीतिक लाभ लेने के लिए रैली करके पूरी सरकार का काम रोक देना कहां की समझदारी है! सत्तापक्ष अनशन-धरनों पर कम ही बैठे देखे जाते हैं, लेकिन राज्य स्तर की नई किस्म की राजनीति के तहत केंद्र सरकार से टकराने और मतदाताओं को लुभाने या यों कहें कि बरगलाने के लिए सरकारी कोष को दोनों हाथों से दिल खोल कर बर्बाद किया जा रहा है। समय की मांग है कि राजनीतिक धरना सरकारी कोष से न कर-के अपनी जेब या अपनी पार्टी के कोष से किया जाए।

● *सतप्रकाश सनोठिया, रोहिणी-सेक्टर 24, दिल्ली*

वायदों पर अमल

लोकतंत्र में नागरिकों को अपनी मांगें रखने का अधिकार है। लेकिन मांग मनवाने के लिए रेलगाड़ियां रोकना, पटरियों पर धरना देना, बसों को रोकना-जलाना और हिंसा पर उतारू होना सरासर अनुचित और निंदनीय है। हम सब भले ही कह लें कि गुर्जर आंदोलन या ऐसे किसी उग्र आंदोलन को सख्ती से कुचला जाए लेकिन इसके लिए प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से हमारे सियासी दल भी कम जिम्मेदार नहीं हैं। वे वोट व सत्ता के लालच में देशवासियों को चुनाव के दौरान लोकलुभावन लॉलीपॉप थमाते रहते हैं।

सभी समुदाय सत्ताधारियों व सियासी दलों से अपेक्षा रखते हैं कि वे चुनावों को दौरान किए गए वायदों को पूरा करें। अगर सियासी दलों ने समय रहते हुए सबक नहीं सीखा तो निश्चित ही आने वाले समय में स्थिति भयावह होगी। आज एक का मुंह बंद करते हैं, तो कल दूसरा भी अपनी मांग को लेकर मुंह खोलेगा। ऐसे में किस-किस का मुंह बंद करेंगे? सबसे अच्छा तरीका यही है कि सरकार सभी वर्गों को एकसमान लाभ प्रदान करे। यही सर्वजन और सर्व समाज हित में है।

● *हेमा हरि उपाध्याय, जावरा रोड, उज्जैन*

डॉक्टरी लापरवाही

पिछले दिनों हैदराबाद के अस्पताल में एक महिला अपने पैर के ऑपरेशन के लिए भर्ती हुई जहां डॉक्टरों ने लापरवाही के चलते उसके दूसरे पैर का ऑपरेशन कर दिया। जब महिला होश में आई तब पता चला कि परेशानी तो दूसरे पैर में थी लेकिन स्वस्थ पैर का ऑपरेशन कर दिया गया। यह पहला मामला नहीं है जिसमें ऐसी लापरवाही हुई हो। एक मामले में तो डॉक्टर ने ऑपरेशन करते वक्त महिला के शरीर में ही कैंची छोड़ दी थी। आखिर ऐसी लापरवाहियों का खमियाजा मरीज कब तक भुगतते रहेंगे? सरकार को इस पर ध्यान देना चाहिए और दोषी डॉक्टरों के खिलाफ कड़ी कार्रवाई करनी चाहिए।

● *प्रदीप कुमार सारण, कृष्ण नगर, बीकानेर*